Dr Vandana Suman
Associate professor
Deptt of Philosophy
H D Jain College, Ara
M.A semester - 1 Philosophy CC-04
Indian and western Ethics

"Moore: Concept of Good"

मूर के अनुसार नैतिकता की अवधारणा अपने आप में एक स्वतंत्र अवधारणा है और इसकी अभिव्यक्ति अधिकतर 'शुभ' जैसे शब्दों के द्वारा की जाती है।

मूर के अनुसार 'शुभ' एक सरल अपरिभाष्य तथा अविश्लेषणीय गुण है जिसका अंतर्बोध के द्वारा सीधे तौर पर ही ज्ञान होता है। जिस तरह पीलापन का कोई विश्लेषण नहीं हो सकता और जिस तरह इसका ज्ञान प्रत्यक्ष के द्वारा संभव हो सकता है, उसी तरह शुभता का भी कोई विश्लेषण नहीं हो सकता और इसे केवल प्रत्यक्ष अंतर्बोध के द्वारा ही जाना जा सकता है।

शुभ वस्तुएँ दो प्रकार की हो सकती हैं, क्योंकि कुछ वस्तुएँ साधन के रूप में शुभ होती हैं और कुछ साध्य के रूप में। किसी साध्य को सिद्ध करने के लिए जो भी कर्म या स्वभाव सहायक सिद्ध होता है, वह साधन के रूप में शुभ होता है। और जो भी वास्तविक स्थिति साध्य अर्थात अंतिम रूप से प्राप्त करने योग्य मानी जाती है, वह साध्य के रूप में शुभ होती है।

शुभ की संभावना के साथ-साथ अशुभ की संभावना भी रहती ही है। साधनरूपी दु:ख नैतिक दृष्टि से अशुभ या खराब नहीं भी हो सकता।

यदि कोई दुःखद साधन किसी शुभ साध्य को सिद्ध करता है, तो वह साधन नैतिक दृष्टि से अशुभ एवं परिहार्य नहीं होता। दुःख परिहार्य तभी होता है, जब वह किसी भी तरह शुभ उत्पन्न नहीं कर सकता। ऐसे सभी दुःख को हम निषेधात्मक आदर्श कह सकते हैं।

मूर ने आदर्शों को तीन वर्गों में बाँटा है — 1. शुभ, 2. अशुभ एवं 3. मिश्रित शुभ। जहाँ शुभ एवं मिश्रित शुभ सकारात्मक आदर्श हैं, वहीं अशुभ नकारात्मक आदर्श है। मनुष्य को जहाँ शुभ एवं मिश्रित शुभ को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए, वहीं उसे अशुभ का बराबर परित्याग ही करना चाहिये।

1. शुभ आदर्श एक ऐसी मानसिक स्थिति है जिसके तीन अंग होते हैं — चेतना, भावना और उनके विषय। सुख अपने आप में आदर्श नहीं हो सकता बल्कि उसकी अनुभूति ही आदर्श हो सकती है। वह सुख किस काम का जिसे कोई भोग ही न सके अर्थात जिसकी कोई व्यक्ति अनुभूति ही न कर सके। सुखानुभूति जैसे आदर्श में सुख विषय है और अनुभूति

इसकी चेतना है। चेतना के साथ ही भावना भी होती है, जो या तो सकारात्मक यानी अनुमोदनात्मक होती है या नकारात्मक यानी वर्जनात्मक। अनुमोदन या वर्जन अपने आप में नैतिक गुण से युक्त नहीं हो सकता। इसका नैतिक गुण से युक्त होना इस बात पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार के विषय से संबद्ध है। यदि अनुमोदन शुभ विषय का होता है, तो वह नैतिक होता है; और यदि वह अशुभ विषय का होता है, तो वह अनैतिक होता है। जैसे:— यदि आप मानव के पारस्परिक प्रेम का अनुमोदन करते हैं तो आपका अनुमोदन नैतिक है, पर यदि आप हिंसा का अनुमोदन करते हैं, तो आपका अनुमोदन अनैतिक हो जाता है। इसी तरह यदि आप मनुष्यों के पारस्परिक प्रेम के प्रति वर्जनात्मक भावना रखते है तो आपकी भावना अनैतिक होगी लेकिन यदि आप हिंसात्मक कर्मों के प्रति ऐसी भावना रखते हैं, तो आपकी भावना नैतिक होगी। अतः आदर्श का निरूपण इसके अंगों अर्थात् इसकी चेतना, इसकी भावना तथा इसके विषय के परिप्रेक्ष्य में ही करना चाहिए।

मूर के अनुसार सकारात्मक अर्थात् शुभ आदर्श दो प्रकार के होते हैं — 1. अमिश्रित तथा 2. मिश्रित। ये क्रमशः अमिश्रित शुभ तथा 2. मिश्रित शुभ

है क्रमशः अमिश्रित शुभ तथा मिश्रित शुभ भी कहे जा सकते हैं। और प्रकारात्मक आदर्श एक ही प्रकार का होता है किन्तु इसे 'नागार्थ'। अशुभ का नाम दे सकते हैं। अमिश्रित शुभ वे हैं जिनमें केवल शुभ क्रियाओं का अनुमोदन ही होता है। ऐसे शुभ दो प्रकार के होते हैं 1. सौन्दर्य की आनन्ददायक अनुभूति तथा 2. प्रेमानुभूति। ये शुभ अमिश्रित इसलिए कहलाते हैं कि इनमें किसी भी तरह से कोई भी अशुभ तत्व विद्यमान नहीं रहता। किंतु मिश्रित शुभ में किसी-न-किसी तरह अशुभ तत्व विद्यमान रहता ही है।

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि यदि मिश्रित शुभ में किसी-न-किसी तरह अशुभ वर्तमान रहता ही है, तो वह शुभ कैसे हो जा सकता है? इसका उत्तर यह है कि मिश्रित शुभ के अशुभ तत्व का इस मिश्रित शुभ में इस प्रकार समेकन हो जाता है कि वह एक आंगिक इकाई के रूप में पूरी तरह शुभ हो जाता है। जैसे भूर साहस करुणा तथा नैतिक भावना की चर्चा करते हैं। हम जानते हैं, बुराई का प्रतिकार साहस के द्वारा संभव हो सकता है। बुराई अपने आप में तो खराब है ही, पर उसका

प्रतिकार निश्चित रूप से (अच्छा) (good) या शुभ होता है, निश्चित ऐसा प्रतिकार (अवश्य) करना चाहिये। इसी तरह करुणा तभी संभव हो सकती है जब पीड़ा या कष्ट का अस्तित्व हो। पर करुणा शुभ इसलिए नहीं होती कि इसमें किसी प्राणी की पीड़ा का ज्ञान वर्तमान रहता है, बल्कि इसलिए कि इसमें उस पीड़ा के दूरीकरण की आकांक्षा वर्तमान रहती है। और नैतिकता भी तो बुराई के प्रतिकार से ही संबद्ध रहता है। यदि संसार में कोई बुराई रहती ही नहीं, तो तब संसार में नैतिकता भी नहीं रहती। हम, चूँकि अपनी सहज तथा / या अर्जित प्रवृत्तियों के कारण दूसरों का अनिष्ट करना चाहते हैं या करते हैं, इसीलिए नैतिकता हमें अनिष्ट न चाहने या न करने की सीख देती है। इस तरह नैतिकता मानो बुराई पर विजय पाने का एक उपाय या साधन है, और इस कारण हम ऐसा कह सकते हैं कि नैतिकता की (अवधारणा) में (अशुभ) उसी प्रकार वर्तमान रहता है जिसप्रकार नैतिक शुभ जैसे (आदर्श) की (अवधारणा) में (अशुभ) वर्तमान रहता है।

यथार्थ अशुभ किसी रूप में हासिल करने योग्य नहीं हो सकता। इसका प्रतिषेध या परित्याग ही आदर्श होता है। मूर के अनुसार ऐसे अशुभ जिनका हर हालत में परित्याग करना चाहिये तीन प्रकार के होते हैं। पहला

FEBRUARY '20

M	T	W	T	F	S	S
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	

MARCH '20

M	T	W	T	F
30	31			
2	3	4	5	6
9	10	11	12	13
16	17	18	19	20
23	24	25	26	27

प्रकार वह है जिसमें बुराई से प्रेम किया जाता है, जैसे निर्दोष व्यक्ति की हिंसा का अनुमोदन और इस तरह के आचरण के प्रति अनुराग। दूसरे प्रकार में अच्छाई की घृणा की जाती है, जैसे परोपकार की निंदा और भर्त्सना। और तीसरे प्रकार का उदाहरण घोर पीड़ा या कष्ट की अनुभूति है, ऐसी अनुभूति में न तो किसी तरह का अनुराग रहता है और न ही किसी तरह की घृणा ही। हाँ, इसमें चेतना तो रहती ही है। वस्तुतः इन तीनों प्रकार के अशुभों में चेतना और विषय तो रहते ही हैं, पर प्रथम और द्वितीय प्रकार के अशुभों में चेतना और विषय के अलावे भावना भी विद्यमान रहती है जैसे पहले में प्रेम और दूसरे में घृणा।

अशुभ अपने आप में आदर्श नहीं माना जाता, बल्कि इसका परित्याग आदर्श माना जाता है। मूर के अनुसार आदर्श एकात्मक नहीं होकर अनेकात्मक होता है। अशुभ आदर्श की अवधारणा में भी एक अंग अशुभ का है, तो दूसरा परित्याग का।